स एतमग्नये कामाय पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपत्। ब्रह्मणे चरुम्। अनुमत्यै चरुम्। ततो वै तस्य ब्रह्मण्वान् यज्ञो भवत्। अनु स्वर्गं लोकमविन्दत्। ब्रह्मण्वान् ह्वा अस्य यज्ञो भवति। अनु स्वर्गं लोकं विन्दति। य एतेन हविषा यजते। य उचैनदेवं वेद। सोऽत्र जुहोति। अग्नये कामाय स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा प्रजापतये स्वाहा। स्वर्गाय लोकाय स्वाहाग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" ॥ ४ ॥ इति। ब्रह्म मन्त्रजातं। तदभिमानिदेवोऽपि ब्रह्मशब्दाभिज्ञेयः। तदनुग्रहरहितं मन्त्रजातं निष्फलं। यथा पूर्वं अनृतया आशया अनृतेन च कामेन वृथा श्रमः। एवमत्रापि निष्फलेन मन्त्रजातेन वृथा श्रमः। 'ब्रह्मण्वान्' सफलमन्त्रयुक्तः, सति देवतानुग्रहे तथा भवति। अन्यत् पूर्ववत्॥

(६) अथ चतुर्थीमिष्टिं विधत्ते। "तं यज्ञोऽब्रवीत्। प्रजापते यज्ञेन वै आम्यसि। अहमु वै यज्ञोऽस्मि। मां नु यजस्व। अथ ते सत्यो यज्ञो भविष्यति। अनु स्वर्गं लोकं वेत्स्यसीति। स एतमग्नये कामाय पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपत्। यज्ञाय चरुम्। अनुमत्यै चरुम्। ततो वै तस्य सत्यो यज्ञोऽभवत्। अनु स्वर्गं लोकमविन्दत्। सत्यो ह्वा अस्य यज्ञो भवति। अनु स्वर्गं लोकं विन्दति। य एतेन हविषा यजते। य उचैनदेवं वेद। सोऽत्र जुहोति। अग्नये कामाय स्वाहा यज्ञाय स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा प्रजापतये स्वाहा। स्वर्गाय लोकाय स्वाहाग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति" ॥ ५ ॥ इति।